

अध्याय ३५



काका महाजनी के मित्र और सेठ, निर्बीज मुनक्के, बान्द्रा के एक गृहस्थ की अनिद्रा, बालाजी पाटील नेवासकर, बाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना।

इस अध्याय में भी उदी का महात्म्य ही वर्णित है। इसमें ऐसी दो घटनाओं का उल्लेख है कि परीक्षा करने पर देखा गया कि बाबा ने दक्षिणा अस्वीकार कर दी। पहले इन घटनाओं का वर्णन किया जाएगा।

आध्यात्मिक विषयों में साम्प्रदायिक प्रवृत्ति उन्नति के मार्ग में एक बड़ा रोड़ा है। निराकारवादियों से कहते सुना जाता है कि ईश्वर की सगुण उपासना केवल एक भ्रम ही है और संतगण भी अपने सदृश ही सामान्य पुरुष हैं। इस कारण उनकी चरण वन्दना कर उन्हें दक्षिणा क्यों देनी चाहिए? अन्य पन्थों के अनुयायियों का भी ऐसा ही मत है कि अपने सद्गुरु के अतिरिक्त अन्य सन्तों को नमन तथा उनकी भक्ति न करनी चाहिए। इसी प्रकार की अनेक आलोचनाएँ साईबाबा के सम्बंध में पहले सुनने में आया करती थीं तथा अभी भी आ रही हैं। किसी का कथन था कि जब हम शिरडी गए तो बाबा ने हमसे दक्षिणा माँगी। क्या इस भाँति दक्षिणा ऐँठना एक सन्त के लिये शोभनीय था? जब वे इस प्रकार आचरण करते हैं तो फिर उनका साधु-धर्म कहाँ रहा? परन्तु ऐसी भी कई घटनाएँ अनुभव में आई हैं कि जिन लोगों ने शिरडी जाकर अविश्वास से बाबा के दर्शन किये, उन्होंने ही सर्वप्रथम बाबा को प्रणाम कर प्रार्थना भी की। ऐसे ही कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

काका महाजनी के मित्र

काका महाजनी के मित्र निराकारवादी तथा मूर्ति-पूजा के सर्वथा

विरुद्ध थे। कौतूहलवश वे काका महाजनी के साथ दो शर्तों पर शिरडी चलने को सहमत हो गए कि (१) बाबा को नमस्कार न करेंगे और (२) न ही उन्हें कोई दक्षिणा देंगे। जब काका ने स्वीकारात्मक उत्तर दे दिया, तब फिर शनिवार की रात्रि को उन दोनों ने बम्बई से प्रस्थान कर दिया और दूसरे ही दिन प्रातःकाल शिरडी पहुँच गए। जैसे ही उन्होंने मस्जिद में पैर रखा, उसी समय बाबा ने उनके मित्र की ओर थोड़ी देर देखकर उनसे कहा कि, “अरे आइये, श्रीमान् पधारिए। आपका स्वागत है।” इन शब्दों का स्वर कुछ विचित्र-सा था और उनका स्वर प्रायः उन मित्र के पिता के बिल्कुल अनुरूप ही था। तब उन्हें अपने कैलासवासी पिता की स्मृति हो आई और वे आनन्द विभोर हो गए। क्या मोहिनी थी उस स्वर में? आश्चर्ययुक्त स्वर में उनके मित्र के मुख से निकल पड़ा कि निस्सन्देह यह स्वर मेरे पिताजी का ही है। तब वे शीघ्र ही दौड़कर गए और अपनी सब प्रतिज्ञाएँ भूलकर उन्होंने बाबा के श्री चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। बाबा ने काका से तो दोपहर में तथा विदा लेते समय दो बार दक्षिणा माँगी, परन्तु मित्र से एक शब्द भी न कहा। उनके मित्र ने फुसफुसाते हुए कहा कि, “भाई! देखो, बाबा ने तुमसे तो दो बार दक्षिणा माँगी, परन्तु मैं भी तो तुम्हारे साथ हूँ, फिर वे मेरी इस प्रकार उपेक्षा क्यों करते हैं?” काका ने उत्तर दिया कि, “बेहतर तो यह होगा कि तुम स्वयं ही बाबा से पूछ लो।” बाबा ने पूछा कि, “क्या कानाफूसी हो रही है?” तब उनके मित्र ने कहा कि, “क्या मैं भी आपको दक्षिणा दूँ।” बाबा ने कहा कि, “तुम्हारी अनिच्छा देखकर मैंने तुमसे दक्षिणा नहीं माँगी, परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा ऐसी ही है तो तुम दक्षिणा दे सकते हो।” तब उन्होंने सत्रह रुपये भेंट किये, जितने काका ने दिये थे। तब बाबा ने उन्हें उपदेश दिया कि, “अपने बीच जो तेली की दीवार (भेदभाव) है, उसे नष्ट कर दो, जिससे हम परस्पर देखकर अपने मिलन का पथ सुगम बना सकें।” बाबा ने उन्हें लौटने की अनुमति देते हुए कहा कि, “तुम्हारी यात्रा सफल रहेगी।” यद्यपि आकाश में बादल छाये हुए थे और वायु वेग से चल रही थी तो भी दोनों सकुशल बम्बई पहुँच गए। घर पहुँचकर जब उन्होंने द्वार तथा खिड़कियाँ खोलीं तो

वहाँ दो मृत चमगादड़ पड़े देखे। एक तीसरा उनके सामने ही फुर करके खिड़की से उड़ गया। उन्हें विचार आया कि यदि मैंने खिड़की खुली छोड़ी होती तो इन जीवों के प्राण अवश्य बच गए होते, परन्तु फिर उन्हें विचार आया कि यह उनके भाग्यानुसार ही हुआ है और बाबा ने तीसरे की प्राण-रक्षा के हेतु हमें शीघ्र ही वहाँ से वापस भेज दिया।

काका महाजनी के सेठ

बम्बई में ठक्कर धरमसी जेठाभाई सॉलिसिटर (कानूनी सलाहकार) की एक फर्म थी। काका इस फर्म के व्यवस्थापक थे। सेठ और व्यवस्थापक के सम्बन्ध परस्पर अच्छे थे। श्रीमान् ठक्कर को ज्ञात था कि काका बहुधा शिरडी जाया करते हैं और वहाँ कुछ दिन ठहरकर बाबा की अनुमति से ही वापस लौटते हैं। कौतूहलवश बाबा की परीक्षा करने के विचार से उन्होंने भी होलिकोत्सव के अवसर पर काका के साथ ही शिरडी जाने का निश्चय किया। काका का शिरडी से लौटना सदैव अनिश्चित सा ही रहता था, इसलिये अपने साथ एक मित्र को लेकर वे तीनों रवाना हो गए। मार्ग में काका ने बाबा को अर्पित करने हेतु दो सेर मुनक्का मोल लिए। ठीक समय पर शिरडी पहुँच कर वे उनके दर्शनार्थ मस्जिद में गए। बाबासाहेब तर्खड भी तब वहीं पर थे। श्री ठक्कर ने उनसे आने का हेतु पूछा। तर्खड ने उत्तर दिया कि मैं तो दर्शन के लिये ही आया हूँ। मुझे चमत्कारों से कोई प्रयोजन नहीं। यहाँ तो भक्तों की हार्दिक इच्छाओं की पूर्ति होती है। काका ने बाबा को नमस्कार कर उन्हें मुनक्के अर्पित किये। तब बाबा ने उन्हें वितरित करने की आज्ञा दे दी। श्रीमान् ठक्कर को भी कुछ मुनक्के मिले। एक तो उन्हें मुनक्का रुचिकर न लगता था, दूसरे इस प्रकार अस्वच्छ खाने की डॉक्टर ने मनाही करी थी। इसलिये वे कुछ निश्चय न कर सके और न चाहते हुए भी उन्हें ग्रहण करना पड़ा और फिर दिखावे मात्र के लिये ही उन्होंने मुँह में डाल लिया। अब समझ में न आता था कि उनके बीजों का क्या करें। मस्जिद की फर्श पर तो थूका नहीं जा सकता था, इसलिये उन्होंने वे बीज अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने खीसे में डाल लिये और सोचने लगे कि जब बाबा

सन्त हैं तो यह बात उन्हें कैसे अविदित रह सकती है कि मुझे मुनक्के नापसंद हैं? फिर क्या वे मुझे इसके लिये लाचार कर सकते हैं? जैसे ही यह विचार उनके मन में आया, बाबा ने उन्हें कुछ और मुनक्के दिये, पर उन्होंने खाया नहीं और अपने हाथ में ले लिया। तब बाबा ने उन्हें खा लेने को कहा। उन्होंने आज्ञा का पालन किया और चबाने पर देखा कि वे सब निर्बीज हैं। वे चमत्कार की इच्छा रखते थे, इसलिये उन्हें देखने को मिल गया। उन्होंने सोचा कि बाबा समस्त विचारों को तुरन्त जान लेते हैं और मेरी इच्छानुसार ही उन्होंने उन्हें बीजरहित बना दिया है। क्या अद्भुत शक्ति है उनमें? फिर शंका-निवारणार्थ उन्होंने तर्खड से, जो समीप ही बैठे हुये थे और जिन्हें भी थोड़े मुनक्के मिले थे, पूछा कि किस किस्म के मुनक्के तुम्हें मिले? उत्तर मिला “अच्छे बीजों वाले।” श्रीमान् ठक्कर को तब और भी आश्चर्य किया कि यदि बाबा वास्तव में सन्त हैं तो अब सर्वप्रथम मुनक्के काका को ही दिये जाने चाहिए। इस विचार को जानकर बाबा ने कहा कि अब पुनः वितरण काका से ही आरम्भ होना चाहिए। यह सब प्रमाण श्री ठक्कर के लिये पर्याप्त थे।

फिर शामा ने बाबा से परिचय कराया कि आप ही काका के सेठ हैं। बाबा कहने लगे कि ये उनके सेठ कैसे हो सकते हैं? इनके सेठ तो बड़े विचित्र हैं। काका इस उत्तर से सहमत हो गए। अपना हठ छोड़कर ठक्कर ने बाबा को प्रणाम किया और वाड़े को लौट आए। मध्याह्न की आरती समाप्त होने के उपरान्त वे बाबा से प्रस्थान करने की अनुमति प्राप्त करने के लिये मस्जिद में आए। शामा ने उनकी कुछ सिफारिश की, तब बाबा इस प्रकार बोले :-

“एक सनकी मस्तिष्क वाला सभ्य पुरुष था, जो स्वस्थ और धनी भी था। शारीरिक तथा मानसिक व्यथाओं से मुक्त होने पर भी वह स्वतः ही अनावश्यक चिंताओं में डूबा रहता और व्यर्थ ही यहाँ-वहाँ भटक कर अशान्त बना रहता था। कभी वह स्थिर और कभी चिन्तित रहता था। उसकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे दया आ गई और मैंने उससे कहा कि कृपया अब आप अपना विश्वास एक इच्छित स्थान पर स्थिर कर लें। इस प्रकार व्यर्थ भटकने से कोई लाभ नहीं।”

“शीघ्र ही एक निर्दिष्ट स्थान चुन लो” – इन शब्दों से ठक्कर की समझ में तुरन्त आ गया कि यह सर्वथा मेरी ही कहानी है। उनकी इच्छा थी कि काका भी हमारे साथ ही लौटें। बाबा ने उनका ऐसा विचार जानकर काका को सेठ के साथ ही लौटने की अनुमति दे दी। किसी को विश्वास न था कि काका इतने शीघ्र शिरडी से प्रस्थान कर सकेंगे। इस प्रकार ठक्कर को बाबा द्वारा विचार जानने का एक और प्रमाण मिल गया।

तब बाबा ने काका से १५ रुपये दक्षिणा माँगी और कहने लगे कि, “यदि मैं किसी से एक रुपया दक्षिणा लेता हूँ तो उसे दसगुना लौटाया करता हूँ। मैं किसी की कोई वस्तु बिना मूल्य नहीं लेता और न तो प्रत्येक से माँगता ही हूँ। जिसकी ओर फकीर (ईश्वर) इंगित करते हैं, उससे ही मैं माँगता हूँ और जो गत जन्म का ऋणी होता है, उसकी ही दक्षिणा स्वीकार हो जाती है। **दानी देता है और भविष्य में सुन्दर उपज का बीजारोपण करता है।** धन का उपयोग धर्मोपार्जन के निमित्त ही होना चाहिए। यदि धन व्यक्तिगत आवश्यकताओं में व्यय किया गया तो यह उसका दुरुपयोग है। यदि तुमने पूर्व जन्मों में दान नहीं दिया है तो इस जन्म में पाने की आशा कैसे कर सकते हो? इसलिये **यदि प्राप्ति की आशा रखते हो तो अभी दान करो।** दक्षिणा देने से वैराग्य की वृद्धि होती है, और वैराग्य प्राप्ति से भक्ति और ज्ञान बढ़ जाते हैं। **एक दो और दस गुना लो।”**

इन शब्दों को सुनकर श्री ठक्कर ने भी अपना संकल्प भूलकर बाबा को पन्द्रह रुपये भेंट किये। उन्होंने सोचा कि अच्छा ही हुआ, जो मैं शिरडी आ गया। यहाँ मेरी सब शंकाएँ नष्ट हो गईं और मुझे बहुत कुछ शिक्षा प्राप्त हो गई।

ऐसे विषयों में बाबा की कुशलता बड़ी अद्वितीय थी। यद्यपि वे सब कुछ करते थे, फिर भी वे इन सबसे अलिप्त रहते थे। नमस्कार करने या न करने वाले, दोनों ही उनके लिए एक समान थे। उन्होंने कभी किसी का अनादर नहीं किया। यदि भक्त उनका पूजन करते तो इससे उन्हें न कोई प्रसन्नता होती और यदि कोई उनकी उपेक्षा करता तो न कोई दुःख ही होता। वे सुख और दुःख की भावना से परे हो चुके

थे।

अनिद्रा

बान्द्रा के एक महाशय कायस्थ प्रभु बहुत दिनों से नींद न आने के कारण अस्वस्थ थे। जैसे ही वे सोने लगते, उनके स्वर्गवासी पिता स्वप्न में आकर उन्हें बुरी तरह गालियाँ देते हुए दिखने लगते थे। इससे निद्रा भंग हो जाती और वे रात्रिभर अशांति महसूस करते थे। हर रात्रि को ऐसा ही होता था, जिससे वे किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गए। एक दिन बाबा के एक भक्त से उन्होंने इस विषय में परामर्श किया। उसने कहा कि मैं तो संकटमोचन सर्व-पीड़ा-निवारिणी उदी को ही इसकी रामबाण औषधि मानता हूँ, जो शीघ्र ही लाभदायक सिद्ध होगी। उन्होंने एक उदी की पुड़िया देकर कहा कि इसे शयन के पूर्व माथे पर लगाकर अपने सिरहाने रखो। फिर तो उन्हें निर्विघ्न प्रगाढ़ निद्रा आने लगी। यह देखकर उन्हें महान् आश्चर्य और आनन्द हुआ। यह क्रम चालू रखकर वे अब साईबाबा का ध्यान करने लगे। बाजार से उनका एक चित्र लाकर उन्होंने अपने सिरहाने के पास लगाकर उनका नित्य पूजन करना प्रारम्भ कर दिया। प्रत्येक गुरुवार को वे हार और नैवेद्य अर्पण करने लगे। वे अब पूर्ण स्वस्थ हो गए और पहले के सारे कष्टों को भूल गए।

बालाजी पाटील नेवासकर

ये बाबा के परम भक्त थे। ये उनकी निष्काम सेवा किया करते थे। दिन में जिन रास्तों से बाबा निकलते थे, उन्हें वे प्रातःकाल ही उठकर झाड़ू लगाकर पूर्ण स्वच्छ रखते थे। इनके पश्चात् यह कार्य बाबा की एक परमभक्त महिला राधाकृष्णमाई ने किया और फिर अब्दुल ने। बालाजी जब अपनी फसल काटकर लाते तो वे सब अनाज उन्हें भेंट कर दिया करते थे। उसमें से जो कुछ बाबा उन्हें लौटा देते, उसी से वे अपने कुटुम्ब का भरणपोषण किया करते थे। यह क्रम अनेक वर्षों तक चला और उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनके पुत्र ने इसे जारी रखा।

उदी की शक्ति और महत्त्व

एक बार बालाजी के श्राद्ध दिवस की वार्षिकी (बरसी) के अवसर पर कुछ व्यक्ति आमंत्रित किये गए। जितने लोगों के लिये भोजन तैयार किया गया, उससे तिगुने लोग भोजन के समय एकत्रित हो गए। यह देख श्रीमती नेवासकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी हो गई। उन्होंने सोचा कि यह भोजन सबके लिये पर्याप्त न होगा और कहीं कम पड़ गया तो कुटुम्ब की भारी अपकीर्ति होगी। तब उनकी सास ने उनसे सान्त्वना-पूर्ण शब्दों में कहा कि चिन्ता न करो, यह भोजन-सामग्री हमारी नहीं, ये तो श्री साईबाबा की है। प्रत्येक बर्तन में उदी डालकर उन्हें वस्त्र से ढँक दो और बिना वस्त्र हटाये सबको परोस दो। वे ही हमारी लाज बचायेंगे। परामर्श के अनुसार ऐसा ही किया गया। भोजनार्थियों के तृप्तिपूर्वक भोजन करने के पश्चात् भी भोजन सामग्री यथेष्ट मात्रा में शेष देखकर उन लोगों को महान् आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। यथार्थ में देखा जाए तो जैसा जिसका भाव होता है, उसके अनुकूल ही अनुभव प्राप्त होता है। ऐसी ही घटना मुझे प्रथम श्रेणी के उपन्यायाधीश तथा बाबा के परम भक्त श्री बी.ए. चौगुले ने बतलाई। फरवरी, सन् १९४३ में करजत (जिला अहमदनगर) में पूजा का उत्सव हो रहा था, तभी इस अवसर पर एक वृहत् भोज का आयोजन हुआ। भोजन के समय आमंत्रित लोगों से लगभग पाँच गुने अधिक भोजन के लिये आए, फिर भी भोजन सामग्री कम नहीं हुई। बाबा की कृपा से सबको भोजन मिला, यह देख सबको आश्चर्य हुआ।

साईबाबा का सर्प के रूप में प्रगट होना

शिरडी के रघु पाटील एक बार नेवासे के बालाजी पाटील के पास गए, जहाँ सन्ध्या को उन्हें ज्ञात हुआ कि एक साँप फुफकारता हुआ गौशाला में घुस गया है। सभी पशु भयभीत होकर भागने लगे। घर के लोग भी घबरा गए, परन्तु बालाजी ने सोचा कि श्री साई ही इस रूप में यहाँ प्रगट हुए हैं। तब वे एक प्याले में दूध ले आए और निर्भय होकर उस सर्प के सम्मुख रखकर उनको इस प्रकार सम्बोधित कर कहने लगे कि, “बाबा! आप फुफकार कर शोर क्यों कर रहे हैं? क्या

आप मुझे भयभीत करना चाहते हैं? यह दूध का प्याला लीजिए और शांतिपूर्वक पी लीजिये''। ऐसा कहकर वे बिना किसी भय के उसके समीप ही बैठ गए। अन्य कुटुम्बजन तो बहुत घबरा गए और उनकी समझ में न आ रहा था कि अब वे क्या करें? थोड़ी देर में ही सर्प अदृश्य हो गया और किसी को भी पता न चला कि वह कहाँ गया। गौशाला में सर्वत्र देखने पर भी वहाँ उसका कोई चिह्न न दिखाई दिया।

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

सप्ताह पारायणः पंचम विश्राम